वह कलीसिया जिसका सदस्य बनना मैं प्रिय जानूंगा
(2:42-47)

पिछले पाठ में हमने देखा था कि पिन्तेकुस्त के दिन तीन हज़ार लोगों ने वचन को ग्रहण कर बपतिस्मा लिया। विश्वास करना और बपतिस्मा लेना मसीह के साथ हमारे सज़्बन्ध का आरज़्भ ही है। उसके बाद हमें उसके साथ चलना होता है। इस अध्याय के अन्तिम पद (पद 42-47) हमें बताते हैं कि ''मसीह में बालकों'' (1 कुरिन्थियों 3:1) ने चलना कैसे सीखा।

इन पदों या आयतों का अध्ययन करते हुए, हम नये मसीहियों की एक विशेष मण्डली की तस्वीर देखते हैं जो प्रभु के लिए जोश से भरी हुई है। इस संगति का भाग बनना मुझे कितना अच्छा लगेगा! इस विशेष समूह के बहुत से गुणों का वर्णन किया जा सकता है। यह सीखते रहने वाली, संगति करने वाली, प्रार्थना करते रहने वाली, क्रियाशील और सदैव बढ़ने वाली कलीसिया थी। ''वह कलीसिया, जिसका सदस्य बनना मैं प्रिय जानूंगा'' उसके निम्नलिखित पांच गुणों पर मैं ज़ोर देता हूं।

आराधना करने वाली कलीसिया (2:42)

अध्याय 2 की आयत 42 के आरज़्भ में ''और'' शब्द पर ध्यान दीजिए, कि यह इस पहले वाली आयत को किस प्रकार से जोड़ता है।[1] तीन हज़ार लोगों ने बपतिस्मा लेने के तुरन्त बाद नये मसीहियों और देह के अंगों के रूप में काम करना आरज़्भ कर दिया। उन्होंने क्या किया? आयत 42 में इसका सार मिलता है: ''और वे प्रेरितों से शिक्षा पाने,[2] और संगति रखने में और रोटी तोड़ने में और प्रार्थना करने में *लौलीन* रहे।''

कलीसिया को स्थापना के तुरन्त बाद ही निर्देश नहीं मिल गए थे।[3] बल्कि, परमेश्वर ने प्रेरितों द्वारा कलीसिया के सदस्यों को व्यक्तिगत तौर पर सिखाया कि उन्हें क्या विश्वास करना चाहिए और क्या कार्य करना चाहिए।[4] यीशु ने प्रेरितों को यह आदेश दिया था कि लोगों को बपतिस्मा देने के बाद, उन्हें वे सारी बातें मानना सिखाएं जिनकी उसने उन्हें आज्ञा दी थी (मत्ती 28:19, 20)। ऐसा करके वे प्रसन्न थे, और बपतिस्मा लेने वाले उनकी शिक्षा को सुनकर प्रसन्न होते थे। ये नये मसीही नये जीवन के ढंग को जानने के लिए उत्सुक थे। इस प्रकार वे परमेश्वर के प्रवक्ताओं को सुनने में *लौलीन रहे*।[5] अंग्रेज़ी अनुवाद NIV स्टडी

बाइबल में, लुइस फोस्टर की टिप्पणी है कि आज वही शिक्षा ''नये नियम की पुस्तकों में उपलब्ध है।'' क्या *हम* उन आरम्भिक मसीहियों की तरह ही परमेश्वर की इच्छा को जानने के उत्सुक हैं? क्या हम वास्तव में वचन को पढ़ने और उसका अध्ययन करने के लिए स्वयं को समर्पित करते हैं? क्या हम उसमें लौलीन रहते हैं?

''में लौलीन रहे'' शब्द आयत 42 में सूचीबद्ध चार विशेष बातों पर लागू होते हैं। उसके बाद, नये बने मसीही स्वयं को लगातार संगति में लौलीन रखते थे। ''संगति'' शब्द विशेष यूनानी शब्द *कोयनोनिया* का अनुवाद है। कोयनोनिया का मूल अर्थ ''साझे का होना'' है और कभी-कभी इसका अनुवाद ''बांटना'' भी किया जाता है।[6] इस शब्द का इस्तेमाल उनके लिए हो सकता है जिनके साथ हमारा सम्बन्ध है। इसलिए हम पढ़ते हैं कि हमारी संगति परमेश्वर के साथ, मसीह के साथ, पवित्र आत्मा के साथ[7] और अन्य मसीहियों के साथ है (1 यूहन्ना 1:7)। कोयनोनिया शब्द को अपने सामान्य मेल की *अभिव्यक्ति* के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है। नये नियम में इस शब्द का अनुवाद कई रूपों में हुआ है जैसे 1 कुरिन्थियों 10:16 में[8] ''सहभागिता'' और रोमियों 15:26 (तु. 2 कुरिन्थियों 9:13) में ''चन्दा'' है। प्रभु भोज में भाग लेने के साथ हम सप्ताह के पहले दिन चन्दा देकर, अपने साझे विश्वास को व्यक्त करते हैं।[9]

क्योंकि नये नियम में कोयनोनिया शब्द का प्रयोग अक्सर आर्थिक सहभागिता के लिए किया गया है, और आयत 44 हमें बताती है कि आरम्भिक मसीहियों में ''सब वस्तुएं *साझे की* थीं'' (*कोयनोनिया* के मूल, *कोयना* से)। कुछ विद्वानों का मत है कि यहां मुख्य विचार आर्थिक संगति का है। कुछ अनुवादों में तो कोयनोनिया का अनुवाद ''चन्दा'' या इसके समान हुआ है। सम्भवत: इस शब्द का अर्थ उदारता से समझना बेहतर होगा; इसमें सांसारिक वस्तुओं की सहभागिता शामिल है, परन्तु यीशु में मसीहियों के नये जीवन की पूर्णता भी शामिल है। एक बार और हमें अपने आप से पूछना चाहिए कि क्या हम अपने साथी मसीहियों के साथ सम्बन्धों की परवाह करते हैं या नहीं। क्या हम मसीह में अपने भाइयों व बहनों के बारे में जानने और उनके साथ एक होने को व्यक्त करने के लिए समर्पित हैं?

तीसरा, नये मसीही स्वयं को लगातार ''रोटी तोड़ने में'' लौलीन रखते थे। ''रोटी तोड़ने'' से भाव प्रभु-भोज (20:7; 1 कुरिन्थियों 10:16)[10] या सामान्य भोजन (2:46) हो सकता है। संदर्भ[11] से पता चलता है कि लूका यहां पर प्रभु-भोज की बात कर रहा था। बाद में, हम देखेंगे कि आरम्भिक कलीसिया हर सप्ताह के पहले दिन प्रभु-भोज में भाग लेने के लिए इकट्ठी होती थी।[12] स्पष्ट है कि यह प्रथा तत्काल प्रारम्भ हो गई थी और मसीह में ये बालक भक्तिपूर्वक हर सप्ताह के पहले दिन प्रभु-भोज में भाग लेने के लिए स्वयं को समर्पित करने लगे थे। आज जब मैं कई लोगों को नियमित रूप से प्रभु की मृत्यु को स्मरण करने के लिए इकट्ठे होते देखता हूं, तो मेरी इच्छा होती है कि वही आत्मा आज भी हो जो लगातार रोटी तोड़ने के लिए स्वयं को समर्पित करने वालों में था!

आयत 42 में उल्लिखित अन्तिम विषय है प्रार्थना: ''और प्रार्थना करने में लौलीन

रहे।'' कलीसिया प्रार्थना के वातावरण में बनी और प्रार्थना के वातावरण में ही रही। आरम्भिक मसीही प्रतिदिन के जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना कर सकते थे क्योंकि वे प्रतिदिन प्रार्थना द्वारा प्रभु से मिलते थे।

लगता है कि आयत 42 का विषय *आराधना* है। बपतिस्मा लेने वाले लोग लगातार स्वयं को परमेश्वर की आराधना के लिए समर्पित करने लगे। इसमें हमारे लिए शिक्षा है: आराधना वास्तव में परमेश्वर के समक्ष अपने आपको खोलना, समर्पित करना, मसीह और परमेश्वर के प्रति विश्वासी होना है। यह भी ध्यान दें कि उनकी आराधना *संगठित* थी। मसीह में बहनें व भाई *मिलकर* आराधना करते थे। एक दूसरे के और परमेश्वर के निकट आने के लिए मिलकर आराधना करने से बढ़कर कोई उपाय हो ही नहीं सकता। पिन्तेकुस्त का दिन सप्ताह का पहला दिन पड़ता था, इसलिए मेरा अनुमान है कि उसी दिन, तीन हज़ार आत्माओं के बपतिस्मा लेने के बाद बनी यरूशलेम की वह नई मण्डली परमेश्वर के वचन को सीखने के लिए, प्रार्थना के लिए और अपने प्रिय उद्धारकर्त्ता की मृत्यु को स्मरण करने के लिए एकत्र हुई थी! सच्चे मन से मिलकर आराधना करने के लिए परमेश्वर हमारी सहायता करे!

भक्तिपूर्ण कलीसिया (2:43)

पिन्तेकुस्त के दिन उन तीन हज़ार लोगों द्वारा बपतिस्मा लिए जाने के बारे में संक्षिप्त विवरण देने के बाद, लूका ने 43 से 47 आयतों में आरम्भिक कलीसिया के जीवन का एक छोटा सा रेखाचित्र दिया है।[13] उसने यह कहते हुए आरम्भ किया, ''और सब लोगों पर भय छा गया; और बहुत से अद्‌भुत काम और चिह्न प्रेरितों के द्वारा प्रकट होते थे''[14] (आयत 43)। ''अद्‌भुत काम और चिह्न'' प्रेरितों के द्वारा किए गए आश्चर्यकर्मों को कहा गया है।[15] यीशु ने प्रेरितों को सुसमाचार का प्रचार करने के साथ ''चिह्न'' देने का वायदा किया था (मरकुस 16:17, 18); उस वायदे के पूरा होने का यह आरम्भ है। बाद में, हम उनके द्वारा किए गए कुछ आश्चर्यकर्मों के बारे में पढ़ेंगे।[16] परन्तु, अभी हमें केवल इतना ही बताया गया है कि यह आश्चर्यचकित करने वाला समय था!

एक निःसवार्थ कलीसिया (2:44, 45)

44 और 45 आयतों को छोड़कर आयत 42 में वर्णित संगति का साकार उदाहरण मिलता है: ''और वे सब विश्वास करने वाले इकट्ठे रहते थे, और उनकी सब वस्तुएं साझे की थीं; और वे अपनी-अपनी सम्पत्ति और सामान बेच बेचकर जैसी जिसकी आवश्यकता होती थी बांट दिया करते थे।''

संसार ने ऐसा पहले कभी नहीं देखा था! कलीसिया के बहुत से लोग कुछ ही दिन पहले एक दूसरे के लिए बिल्कुल अजनबी थे। वे अलग-अलग पृष्ठभूमि और संस्कृतियों से आए थे। बावजूद इसके, वे एक दूसरे का ध्यान रखते थे, विशेषकर निर्बलों व असहायों का! यहूदी लोग ज़रूरतमंदों की उपेक्षा करते थे, जबकि व्यवस्था में उन्हें उनकी देखभाल करने के लिए कहा गया था। अन्यजातियों ने निर्बल लोगों की चिन्ता *कभी नहीं* की थी।

इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि पूरा समाज ही यीशु के अनुयायियों से प्रभावित हो गया था (2:47)।

44 और 45 आयतें भावोत्तेजक और चुनौती भरी हैं। दुख की बात है, कि उनका दुरुपयोग किया गया है। कइयों ने इन आयतों को "मसीही साज़्यवाद का एक उदाहरण" नाम दिया है। जो लोग आदर्शवादी समाज[17] की स्थापना करना चाहते हैं, उन्होंने अपने प्रयासों को सही ठहराने के लिए इन शब्दों का सहारा लिया है। सम्प्रदायों के अगुवे अपने शिष्यों को अपनी सज़्पत्तियां बेचकर उनसे प्राप्त धन को उन्हें देने का दबाव डालने के लिए इन्हीं आयतों का इस्तेमाल करते हैं। हमें समझना चाहिए कि लूका क्या कह रहा *था* और क्या *नहीं* कह रहा था।

पहली बात तो यह कि, लूका ने यह *नहीं* कहा था कि कलीसिया के प्रत्येक सदस्य ने उसी समय अपना सब कुछ बेचा और सर्वमान्य कोष में डाल दिया। केवल "उनकी सब वस्तुएं साझे की थीं" शब्दों को देखकर हमें ऐसा लग सकता है। फिर से देखें कि आयत 45 को कैसे व्यक्त किया गया है: "और वे अपनी-अपनी सज़्पत्ति और सामान बेच बेचकर... बांट *दिया करते* थे।" फिर आयत 46 पर ध्यान दें: कलीसिया के सदस्य प्रतिदिन "घर-घर" रोटी तोड़ते थे। यदि सभी मसीहियों ने उसी समय अपने-अपने घर बेच दिये थे तो फिर वे किसके घरों में इकट्ठे होते थे? काफी समय बाद, अध्याय 4 और 5 में, एक समय तक सामान बेचने की प्रक्रिया अभी भी चल रही थी। इसके बावजूद भी, यरूशलेम में मसीही लोग प्रार्थना के लिए "मरियम के घर" इकट्ठे होते थे (12:12)। उसके पास अभी भी अपना घर था। यरूशलेम में हर एक मसीही ने सर्वमान्य कोष में धन जमा कराने के लिए जोश में आकर अपना सब कुछ *नहीं* बेचा था।

फिर, लूका यह *नहीं* कह रहा था कि प्रेरितों ने शर्त रख दी थी कि इस नए मसीही "समाज" का सदस्य बनने के लिए अपनी सारी सज़्पत्ति दान में देना आवश्यक है। अध्याय 5 में, जब हनन्याह और सफीरा ने झूठ बोला कि उन्होंने भूमि इतने दाम में ही बेची, तो पतरस ने हनन्याह से पूछा था: "शैतान ने तेरे मन में यह बात क्यों डाली है कि तू पवित्र आत्मा से झूठ बोले, और भूमि के दाम में से कुछ रख छोड़े? *जब तक वह तेरे पास रही, क्या तेरी न थी? और जब बिक गई तो क्या तेरे वश में न थी?*" (5:3, 4)।

अन्य शब्दों में, सज़्पत्ति के बिकने से पहले, वह भूमि उनकी थी और वे जैसे चाहते, उसका इस्तेमाल कर सकते थे, और उस भूमि के बिकने के बाद भी, प्राप्त धन उनका था और वे अपनी इच्छानुसार उसे व्यय कर सकते थे। उनका पाप यह नहीं था कि वे सारी की सारी कीमत लाने में नाकाम रहे; बल्कि उनका पाप यह था कि उन्होंने *दिखावा किया* कि वे सारी राशि लेकर आए हैं।[18] हमें ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि मसीही संगति का भाग बनने के लिए हर एक के लिए जो कुछ उसके पास है, उसका दान देना आवश्यक हो।[19] बहुत से संकेतों से पता चलता है कि ऐसा *नहीं* था।

अन्य मसीहियों की सहायता करने के लिए अपनी सज़्पत्ति को बेचना उनकी स्वयं की इच्छा पर निर्भर करता था। मुझे बर्टन कॉफ़मैन की यह टिप्पणी अच्छी लगती है: "प्रेरितों के

काम के तथाकथित साज़्यवाद का ... आज के जगत के साज़्यवाद से वही सज़्बन्ध है जो बन्दूक दिखाकर चन्दा मांगते एक लुटेरे का होता है।''

यदि लूका यह नहीं कह रहा था कि मसीहियों ने तुरन्त अपना सब कुछ बेच डाला या जो कुछ उन्होंने बेचा वह एक *शर्त* को पूरा करना था, तो फिर वह क्या कह रहा था? पहली बात, वह यह कह रहा था कि नये मसीहियों के सामने एक *विशेष* चुनौती थी। यहूदी लोग समस्त सज़्य जगत से पिन्तेकुस्त का पर्व मनाने के लिए वहां आकर इकट्ठे हुए थे। इनमें से बहुत से लोगों ने बपतिस्मा लिया हुआ था। यदि सभी नहीं, तो उनमें से अधिकतर उसी क्षेत्र में रहने लगे थे।[20] जो भी धन राशि वे लेकर आए थे, वह सब खर्च हो चुकी थी। वे यरूशलेम में अपना व्यवसाय भी नहीं बढ़ा सकते होंगे। हो सकता है कि बहुत से लोगों को आर्थिक सहायता की आवश्यकता हो।[21] यह कोई जानबूझकर बनाई गई परिस्थिति नहीं थी, बल्कि अपने आप ही बन गई थी। अन्य शब्दों में, मसीहियों के एक गुट ने इकट्ठे होकर यह निर्णय नहीं लिया कि ''एक सज़्पूर्ण समाज बनाया जाए जिसमें हर कोई अपनी योग्यता के अनुसार चन्दा दे और हर किसी को उसकी आवश्यकता के अनुसार मिले।'' जो परिस्थितियां बनीं वे यरूशलेम में आरज़्भिक वर्षों में बिल्कुल ही भिन्न थीं; ये ऐसी परिस्थितियां थीं जिनकी नकल बाद के वर्षों में कहीं नहीं हुई। कलीसिया के बिखर जाने के बाद हमें कहीं भी यह संकेत नहीं मिलता है कि मसीहियों ने फिर कभी इस प्रकार से ज़रूरतमन्द सदस्यों की सहायता की हो।

इसका यह अर्थ नहीं कि इसमें हमारे लिए कोई शिक्षा ही नहीं है। इस वृत्तांत को सज़्भाले रखना स्पष्ट करता है कि परमेश्वर चाहता है कि जो कुछ उन्होंने किया हम उससे *कुछ* सीख लें: जब हमारे किसी भाई को किसी चीज़ की *आवश्यकता* होती है,[22] तो हमें उसकी सहायता करने के लिए तैयार रहना चाहिए – चाहे उसके लिए हमें अपना कुछ बेचना ही क्यों न पड़े!

फिर से आयत 44 को देखिए: ''और वे सब विश्वास करने वाले इकट्ठे रहते थे, और उनकी सब वस्तुएं साझे की थीं।'' ''सब वस्तुएं साझे की'' होने का अर्थ यह नहीं कि उन्होंने अपना सब कुछ बेच दिया और धन राशि को एक साझे कोष में जमा कर दिया था। फिर इसका क्या अर्थ हुआ? मेरा ज़्याल है कि यह वाक्य आरज़्भिक मसीहियों के *मन* के भाव को प्रकट करता है। उन्हें समझ आ गई थी कि जो कुछ भी उनके पास था वह उनका नहीं, बल्कि परमेश्वर का था (भजन संहिता 50:10-12); वे तो केवल परमेश्वर के सामान के *भण्डारी* थे (1 कुरिन्थियों 4:2)। क्योंकि मसीही लोग अपने भाइयों व बहनों के साथ मिलकर (''संगति में'') रहते थे, तो यह सोचना स्वाभाविक होगा कि उनका सामान साझा था। अपनी सज़्पत्ति का वे किसी की आवश्यकता पूरी करने के लिए इस्तेमाल करने को तैयार थे। यदि उनके भाइयों को कुछ आवश्यकता होती, तो वे उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपनी सज़्पत्ति बेच देते थे (जो कि पिता की ही थी)।

हमारे लिए इसकी प्रासंगिकता 1 यूहन्ना 3:17 में मिलती है: ''पर जिस किसी के पास संसार की सज़्पत्ति हो और वह अपने भाई को कंगाल देखकर उस पर तरस खाना न

चाहे, तो उसमें परमेश्वर का प्रेम क्योंकर बना रह सकता है?''[23] इस प्रश्न का उत्तर बहुत स्पष्ट है : यदि मेरे भाई को सचमुच किसी वस्तु की आवश्यकता है और मुझ में उसकी सहायता करने की क्षमता है और मैं नहीं करता, तो परमेश्वर का प्रेम मुझ में नहीं है। परमेश्वर कोमल हृदय बनने में हमारी सहायता करे, ताकि हम आवश्यकता होने पर अपने भाइयों तथा बहनों की, सहायता करने को तत्पर रहें – यदि व्यक्तिगत बलिदान की आवश्यकता हो, तो भी![24]

एक प्रसन्न कलीसिया (2:46, 47)

46 और 47 आयतें आरम्भिक कलीसिया की संक्षिप्त और आवश्यक रूपरेखा को पूरा करती हैं:

> और वे प्रतिदिन एक मन[25] होकर मन्दिर में इकट्ठे होते थे, और घर-घर[26] रोटी तोड़ते हुए आनन्द और मन की सीधाई[27] से भोजन किया करते थे। और परमेश्वर की स्तुति करते थे, और सब लोग उन से प्रसन्न थे: और जो उद्धार पाते थे, उनको प्रभु प्रतिदिन उन में मिला देता था।

मैं बचपन से ही इस प्रश्न पर यह चर्चा सुनता आया हूं कि ''उद्धार पाने के लिए क्या किसी को बुधवार रात्रि[28] को उपासना में आना ज़रूरी है?'' आरम्भ के मसीहियों को यह प्रश्न असंगत लगता होगा। वे अपने साथी मसीहियों से *प्रतिदिन* मिलते थे! वे प्रतिदिन मन्दिर में इकट्ठे होते थे, जो उन सब के लिए एक जगह इकट्ठे होकर ''प्रेरितों से शिक्षा पाने'' के लिए केवल एक ही बड़ी जगह थी (2:42)।[29] वे, अपने भाइयों व बहनों से घुल-मिल कर रहने और उनके भोजन का स्वाद चखने के लिए प्रतिदिन घरों में भी मिलते थे।[30] फिर, ऐसा करके वे *प्रसन्न* थे: और ''आनन्द और मन की सीधाई से भोजन किया करते थे।'' उन्हें परमेश्वर के अनुग्रह के द्वारा नरक की आग की लपटों में से निकाल लिया गया था; उनके हृदय आनन्द से भर गए थे! दूसरों को उसी आनन्द से भरने के लिए खींचना स्वाभाविक ही था; इसके विपरीत कार्य करना अस्वाभाविक था। (उन्होंने केवल एक दूसरे को *सहा* ही नहीं; बल्कि उन्होंने एक दूसरे के साथ *आनन्द* लिया!)

हम में से कुछ ऐसे मसीही हैं जो पापों से मिले उद्धार के जोश को भूल चुके हैं (2 पतरस 1:9) और आनन्द के विशेष स्वाद को खो चुके हैं। हमें दाऊद के साथ प्रार्थना करनी चाहिए ''अपने किए हुए उद्धार का *हर्ष* मुझे फिर से दे'' (भजन संहिता 51:22)!

एक दूसरे के साथ बांटने वाली कलीसिया (2:46, 47)

इन आरम्भिक मसीहियों की संगति और जोश से कोई भी अनभिज्ञ नहीं रहता। यीशु ने कहा था, ''यदि आपस में प्रेम रखोगे तो इसी से सब जानेंगे, कि तुम मेरे चेले हो'' (यूहन्ना 13:35)। अध्याय 2 के अन्तिम शब्द पढ़कर हमें कोई आश्चर्य नहीं होता कि

''सब लोग उनसे प्रसन्न थे: और जो उद्धार पाते थे, उनको प्रभु प्रतिदिन उनमें मिला देता था'' (2:46, 47)। यह केवल संयोग की बात ही नहीं है कि वाक्यांश ''प्रतिदिन'' उन मसीहियों के लिए है जो लगातार हर रोज़ एक मन (2:46) होकर इकट्ठे होते थे और यह कि लोग हर रोज़ उनमें मिल रहे थे (2:47)। मसीहियों का अपने प्रभु और एक दूसरे के साथ गहरा सम्बन्ध होना दूसरे लोगों को भी आकर्षित करता है!

आज पुलपिटों से, मंचों से, प्रैस के द्वारा यह बताने वाले विचारों की बाढ़ आई हुई है कि ''कलीसिया का विकास कैसे हो।'' यदि हम जानना चाहते हैं कि *परमेश्वर को प्रसन्न करने वाली* कलीसिया का विकास[31] कैसे हो तो प्रेरितों 2:42-47 में दिया गया प्रशिक्षण (क्रैश कोर्स) लेने से अच्छा ढंग और कोई नहीं होगा!

सारांश

क्या ऐसी मण्डली का भाग बनना अद्‌भुत नहीं होगा जिसका वर्णन प्रेरितों 2:42-47 में मिलता है? इससे पहले कि आप ज़ोर से सिर हिलाकर हां कहें, मैं जल्दी से यह भी कह दूं कि हम ऐसी मण्डली के भाग बन *सक*ते हैं। यदि हम में से हर एक वैसा बन जाए जैसा हमें होना चाहिए अर्थात आराधना करने वाला, भक्तिपूर्ण, नि:स्वार्थ, प्रसन्न और बांटने वाला। याद रखिये बाइबल एक आईना है जो हमें अपना चेहरा देखने में सहायता करता है, यह कोई बढ़ा-चढ़ा कर दिखाने वाला शीशा नहीं है कि हमें दूसरों को जांचने की अनुमति दे। परमेश्वर ऐसा मसीही बनने में मेरी सहायता करे जो उस कलीसिया के योग्य हो ''जिसका मैं सदस्य बनना प्रिय जानूंगा।''

प्रेरितों के काम अध्याय 2 का अध्ययन करते समय मैंने ध्यान दिलाया था कि ''बाइबल के कुछ अध्याय इतने महान हैं कि वे अपनी महानता का ब्यान करने के लिए हमारी योग्यता को चुनौती देते हैं'' और ''प्रेरितों के काम 2 एक ऐसा ही अध्याय है।'' इस अध्याय की सच्चाइयों को समझाने के लिए मैंने बहुत परिश्रम किया, परन्तु समाप्ति पर आकर मुझे मानना पड़ता है कि पवित्र शास्त्र के इस निर्णायक भाग को मैंने केवल छुआ ही है। यह एक ऐसा अध्याय है जिसका अध्ययन करने से हम अपने शेष जीवन में लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

यदि प्रेरितों के काम 2 अध्याय पर इन पाठों से मुझे कोई उम्मीद है तो वह यह है कि मसीह यीशु को आपके सामने दिखाया गया है (गलतियों 3:1)। हमने यीशु को क्रूस पर चढ़े देखा, जी उठे देखा, और परमेश्वर के दाहिने हाथ बैठे देखा; फिर हमने देखा कि तीन हज़ार लोगों ने यीशु पर विश्वास करके उसकी आज्ञा मानी और अन्त में यह देखा कि यीशु मसीह आरम्भिक मसीहियों के जीवनों में प्रकट हुआ। परमेश्वर हमारी सहायता करे कि हम सब अपने प्रतिदिन के जीवन में यीशु को महिमा दे सकें।

प्रवचन नोट्स

मैंने अक्सर ''बड़ी सभा कैसे करें'' पर प्रचार करने के लिए सुसमाचार सभाओं की तैयारी के लिए, प्रेरितों के काम 2 अध्याय का इस्तेमाल किया है। बड़ी सभा के लिए आपको आवश्यकता होगी (1) अच्छी तैयारी की (यहां पर मैं प्रेरितों 1 पर समीक्षा करता हूं); (2) अधिक विज्ञापन (परमेश्वर ने हर एक को अपनी ओर आकर्षित किया है); (3) अच्छा सा संदेश (जैसे पतरस ने यीशु के बारे में बताया); और अच्छी स्वीकृति (अच्छे परिणामों के लिए शुद्ध मन वाले श्रोताओं का होना आवश्यक होता है)। इन सभी बातों से मुझे वह सब कुछ बताने का अवसर मिलता है कि सभा की तैयारी के लिए हमने क्या किया और मुझे पता चल जाता है कि अभी क्या करना शेष है।

इस विचार पर तैयारी के लिए कि आरम्भिक कलीसिया का सब कुछ साझा कैसे था, एक अच्छा पाठ तैयार हो सकता है, जो सम्प्रदाय के अगुओं को 2:44,45 का गलत प्रयोग करने से रोकने के लिए और ज़रूरतमंदों की सहायता निःस्वार्थ ढंग से करना सिखाने के लिए हो सकता है। यह पाठ 2:44, 45 से आरम्भ करके 4:32-35 तक जा सकता है।

शब्द ''प्रतिदिन'' 2:46, 47 में प्रयुक्त हुआ है। प्रेरितों के काम की पुस्तक में से ''प्रतिदिन के धर्म'' पर किसी संदेश का आरम्भ यहीं से किया जा सकता है: वे प्रतिदिन मिलते थे (2:46), पवित्र शास्त्र में से ढूंढते थे (17:11); सेवा करते थे (6:1); आत्माओं को बचाते थे (2:47); और गिनती में बढ़ते जाते थे (2:47; 16:5)।

राज्य/कलीसिया की स्थापना

राज्य/कलीसिया के अस्तित्व का उद्देश्य। अनन्तकाल से ही यह परमेश्वर की योजनाओं तथा उद्देश्यों में था (तु. इफिसियों 3:10, 11)।

यह प्रतिज्ञा में विद्यमान था। पूरे ही पुराने नियम में, राज्य/कलीसिया का अस्तित्व भविष्यवाणी और प्रतिज्ञा में विद्यमान था। यशायाह ने कहा था कि अन्त के दिनों में यहोवा का भवन स्थापित किया जाएगा और यहोवा का वचन यरूशलेम से निकलेगा (यशायाह 2:2, 3; 1 तीमुथियुस 3:15 में यहोवा के भवन की पहचान कलीसिया के रूप में बताई गई है)। दानिय्येल ने भविष्यवाणी की कि रोमी राजाओं के दिनों में परमेश्वर का राज्य स्थापित होगा (तु. दानिय्येल 2:44)।

यह तैयारी में विद्यमान था। मसीह ने अपनी व्यक्तिगत सेवकाई रोमी शासन के समय ही आरम्भ की। उसकी व्यक्तिगत सेवकाई के समय, राज्य/कलीसिया की तैयारी चल रही थी। यीशु और यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने प्रचार किया कि राज्य ''निकट'' आ गया था (लगभग वहीं था; मत्ती 4:17; 3:1, 2)। यीशु ने ज़ोर देकर कहा कि उसका राज्य एक *आत्मिक* संस्थान था (यूहन्ना 18:36) और उसने 'राज्य' और 'कलीसिया' को एक दूसरे

के स्थान पर अदल-बदलकर इस्तेमाल किया (मत्ती 16:18, 19)।

यीशु ने कहा कि राज्य ''सामर्थ सहित'' आएगा (मत्ती 9:1)। अपने पुनरुत्थान के बाद उसने चेलों से कहा कि जब पवित्र आत्मा उन पर आएगा तो वे सामर्थ पाएंगे और यह भी कि यरूशलेम से आरम्भ करके वे उसके गवाह होंगे (प्रेरितों 1:6-8)। सामर्थ के आ जाने तक उन्होंने यरूशलेम में ही प्रतीक्षा करनी थी; उस समय से ही ''यरूशलेम से लेकर'' उसके नाम से पापों की क्षमा का प्रचार किया जाना था (लूका 24:45-49)।

यह सामर्थ में विद्यमान था (और विद्यमान रहता है)। मसीह की मृत्यु, गाड़े जाने और जी उठने के बाद आने वाले पहले पिन्तेकुस्त के दिन पवित्र आत्मा आया (प्रेरितों 2:1-4)। इस प्रकार सामर्थ आई; और राज्य/कलीसिया की स्थापना हुई।

जैसे यीशु और यशायाह ने पहले ही कहा था, सुसमाचार के प्रचार का आरम्भ यरूशलेम से हुआ (प्रेरितों 2:29-38)। जिन लोगों ने विश्वास किया, मन फिराया और बपतिस्मा लिया, उन्हें राज्य/कलीसिया में मिलाया गया (प्रेरितों 2:41, 47; KJV)। इस बात से पता चलता है कि बताए गए राज्य/कलीसिया का उस समय अस्तित्व था (प्रेरितों 5:11; 8:1, 3; कुलुस्सियों 1:13; इब्रानियों 12:28; प्रकाशितवाक्य 1:6)।

अब मसीह स्वर्ग में अपने राज्य पर शासन कर रहा है, और युग के अन्त तक वह वापस आने तक शासन करता रहेगा (तु. 1 कुरिन्थियों 15:24-27)। जब तक वह अपने विश्वासी चेलों को अपने साथ स्वर्ग में ले जाने के लिए आ नहीं जाता (यूहन्ना 14:1-3)।

क्या आप मसीह के राज्य/कलीसिया में हैं?

पादटिप्पणियां

[1]आयत 42 की तरह आयत 41 भी एक ही पद्यांश का भाग है; अन्य शब्दों में, इसमें आयत 41 की *बात आगे चलती* है। [2]अंग्रेज़ी अनुवाद KJV में इसे ''the apostles' doctrine (प्रेरितों की शिक्षा)'' कहा गया है। यूनानी शब्द ''डॉक्टरिन'' का अर्थ ''शिक्षा'' है, वह चाहे ''सिद्धांतात्मक'' हो या ''व्यावहारिक''। [3]नये नियम की अन्तिम पुस्तक इसके तीस वर्ष बाद तक पूरी नहीं हुई। [4]कहने का भाव यह है कि शिक्षा केवल प्रेरित ही दे रहे थे, इस बात का एक और प्रमाण है कि पवित्र आत्मा का बपतिस्मा केवल प्रेरितों को ही मिला था। [5]निःसंदेह, ''प्रेरितों से शिक्षा पाने ... में लौलीन रहे'' का यह अर्थ भी था कि वे उत्सुकता से वह सब कुछ करने के लिए तत्पर रहते थे जो प्रेरित उन्हें बताते थे। क्योंकि शेष अध्याय में उनके द्वारा करने पर बल दिया गया है, इसलिए मैंने यहां पर उनके *सीखने* पर ज्यादा ज़ोर दिया है। [6]गलतियों 6:6; इब्रानियों 13:16. 2 कुरिन्थियों 8:23 और फिलेमोन 17 में इससे सम्बन्धित शब्द का अनुवाद ''सहकर्मी'' किया गया है। [7]1 यूहन्ना 1:3; 1 कुरिन्थियों 1:9; 2 कुरिन्थियों 13:14. [8]प्रभु-भोज के सम्बन्ध में हम इस आयत को ''सहभागिता'' के लिए इस्तेमाल करते हैं। [9]मसीह में हमारी संगति सामान्य भोजन में भी व्यक्त होती है (ध्यान दें प्रेरितों 2:46)। किसी भाई से ''संगति तोड़ने'' पर, हमें उसके साथ खाना भी न खाने को कहा गया है (1 कुरिन्थियों 5:11)। जब कलीसिया के सदस्यों द्वारा मिल बैठ कर खाना खाने को हम ''संगति'' कहते हैं तो यह इस शब्द का गलत इस्तेमाल नहीं होगा। दुर्भाग्य से कुछ मण्डलियों में, ''संगति'' शब्द का उपयोग *विशेषकर* इसी प्रकार के अवसरों के लिए किया जाता है, जो कि अच्छी बात नहीं है। [10]प्रभु भोज को कई लोग ''रोटी तोड़ना'' यह प्रमाणित करने के लिए कहते हैं कि उनके सहभागियों को केवल रोटी में भाग लेना चाहिए (दाख रस पुरोहित पीएं)। परन्तु इस शब्द का इस्तेमाल,

यह प्रमाणित नहीं करता कि प्रभु भोज में केवल रोटी ही होगी। जैसे सामान्य भोजन का अर्थ यह कभी नहीं होगा कि उस भोजन में केवल रोटी ही खाई गई। यहां पर प्रचलित भाग का इस्तेमाल किया गया है, जिसमें मुज़्य क्रिया को सज़्पूर्ण क्रिया के रूप में ले लिया गया है। प्रभु यीशु ने आज्ञा दी कि हम अखमीरी रोटी और दाख का रस *दोनों* ही लें (1 कुरिन्थियों 11:13–26)।

[11]आराधना के लिए सुनने और प्रार्थना करने पर ज़ोर दिया गया है। [12]देखिये प्रेरितों 20:7 पर नोट्स देखिये। [13]आयत 43 एक नये पद्यांश के साथ आरज़्भ होती है जो आयत 47 में समाप्त होता है। हिन्दी (OV) बाइबल में ''ज़्य'' को मूल शास्त्र से अक्षरश: अनुवाद किया है। [14]यहां पर केवल प्रेरितों ने ही आश्चर्यकर्म किए; किसी अन्य को अभी तक चमत्कार करने की सामर्थ नहीं दी गई थी। [15]2:22 पर परिचर्चा देखिए। [16]रोगियों को चंगा करना (अध्याय 3 और 5), दुष्टात्माओं को निकालना (5:16), यहां तक कि मुर्दों को जिलाना (9:3–41)। [17]कालान्तर में ऐसे कई प्रयास हुए हैं, परन्तु सब नाकाम। आयत 45 को भूतकाल में लिखा जाना इस विचार को सुदृढ़ करता है: ''और वे अपनी-अपनी सज़्पत्ति और सामान बेच बेचकर जैसी जिसकी आवश्यकता होती थी, बांट दिया करते थे।'' मूल शास्त्र में *aorist* (भूत) काल नहीं है, बल्कि उसमें अपूर्णकाल है, जो यह संकेत देता है कि अतीत में आरज़्भ हुआ कार्य वर्तमान तक जारी है। [18]शायद इसलिए कि वे भी वैसी ही पहचान पाना चाहते थे जैसी कि बर-नबा को मिली थी (4:36, 37)। [19]यीशु ने एक बार एक धनी युवक को चुनौती दी थी कि वह, जो कुछ उसके पास था उसे बेचकर कंगालों को दे दे, और फिर उसके पीछे आए (लूका 18:18–25)। परन्तु, यह, किसी विशेष नवयुवक को दी गई विशेष चुनौती थी, और यह चुनौती मसीह के बाद के सभी चेलों के लिए कभी नहीं थी। यदि किसी मत का अगुआ इस घटना का उदाहरण देकर इस आग्रह को सही ठहराये कि उसके शिष्य अपनी सारी भौतिक वस्तुएं बेचकर उसको सौंप दें, तो मैं उसे टोक कर यह कहना चाहूंगा कि यीशु ने कहा कि सज़्पत्ति बेचकर मिला धन कंगालों को दें, उसे नहीं। [20]स्पष्टत:, अधिकतर (यदि सभी नहीं तो) नये बने मसीही यरूशलेम में ही ठहरे रहे क्योंकि प्रेरितों 8:1–4 में लगता है कि जब तक शाऊल के द्वारा सताए जाने से कलीसिया बिखरी नहीं तब तक आसपास के इलाकों में सुसमाचार का प्रचार नहीं हुआ था।

[21]अगले अध्यायों में केवल दो ही प्रकार के लोगों के ''ज़रूरतमन्द'' होने का विशेष उल्लेख किया गया है; प्रेरित, अपना सारा समय प्रचार एवं शिक्षा देने में ही लगाते थे, इसलिए उनके पास अपने (प्रेरितों 3:6क), और विधवाओं (6:1) के लिए धन नहीं था। परन्तु, हम यह मान सकते हैं कि औरों को भी आवश्यकता थी (तु. प्रेरितों 11:29)। [22]शास्त्र में ''आवश्यकता'' शब्द है ''इच्छा'' नहीं। मेरा यह दायित्व है कि मैं किसी भाई की प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसकी सहायता करूं (अपनी सीमाओं में रहकर); यह सुनिश्चित करने की मेरी कोई ज़िज़्मेदारी नहीं है कि उसकी हर इच्छा पूरी हो। [23]गलतियों 6:10 की आयत भी यहां उपयुक्त लगती है, ''जहां तक अवसर मिले, हम सब के साथ मिलकर भलाई करें, *विशेष करके विश्वासी भाइयों के साथ*।'' [24]प्रेरितों 2:44, 45 में निहित और 1 यूहन्ना 3:17 में व्यक्त किये गये सिद्धांत की एक ही विशेषता है: हमें अपने भाई की आवश्यकता को पूरा करना है; यदि ऐसा करने से वह आलसी न बनता हो तो (तु. 2 थिस्सलुनीकियों 3:10)। [25]लूका द्वारा मन की एकता के बहुत से हवालों में से यह एक है जो कलीसिया की विशेषता बताता है, जिसका हमें लाज़ उठाना चाहिए। [26]आरज़्भिक कलीसिया अलग-अलग जगहों पर मिलती थी, जिसमें सार्वजनिक सभा-स्थल (जैसे मन्दिर आदि) और लोगों के घर शामिल थे (रोमियों 16:5; 1 कुरिन्थियों 16:19; कुलुस्सियों 4:15; फिलेमोन 2)। जहां तक हमें ज्ञात है, बहुत वर्ष बीतने के बाद कलीसियाओं ने आराधना के लिए प्रार्थना भवन बनाना आरज़्भ किया। ''प्रार्थना भवन'' मूल्यवान औज़ार हो सकता है, परन्तु हमें कभी भी यह नहीं सोचना चाहिए कि प्रभु के काम के लिए यह अत्यावश्यक है। [27]यूनानी शब्द का अनुवाद ''सीधाई'' का अर्थ ''मन की एकता'' या ''सादगी'' हो सकता है। [28]क्योंकि यह रविवारों के मध्य में पूरे एक सप्ताह के बाद आता है, इसलिए बहुत सी अमेरिकन कलीसियाओं में किसी न किसी रूप में मध्य-सप्ताह की आराधना के बारे में बाइबल विशेष तौर पर कुछ नहीं कहती, परन्तु ऐसे बहुत से संकेत हैं (जैसे विचाराधीन आयत में) कि आरज़्भिक कलीसिया केवल सप्ताह के पहले दिन ही नहीं

बल्कि आत्मिक संगति के लिए, परमेश्वर के वचन का अध्ययन करने के लिए, आराधना के बारे में मसीही लोगों को सिखाने के लिए, जब भी सम्भव होता, इकट्ठी होती थी। प्रभु के दिन इकट्ठे होने के अलावा (जिसकी आज्ञा परमेश्वर ने दी है), यह स्थानीय नेतृत्व का दायित्व है कि सदस्यों की आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित समयसारणी तय करे। [29]बहुत से टीकाकारों का मानना है कि ये आरम्भिक (यहूदी) मसीही मन्दिर में *यहूदियों* की तरह आराधना करते थे– शायद तब तक जब तक सन 70 में मन्दिर गिर न गया। परन्तु शास्त्र से ऐसा निष्कर्ष नहीं निकलता। यह सत्य है कि मसीही युग के लिए परमेश्वर की इच्छा एक ही बार प्रकट नहीं हो गई थी, परन्तु आयत 42 में संकेत मिलता है कि प्रकट हुई *पहली* बातों में एक यह थी कि मसीहियों को आराधना करनी चाहिए। यह भी सत्य है कि आयत 47 में ''परमेश्वर की स्तुति'' का उल्लेख है, परन्तु इससे तो यह पता चलता है कि वे मसीही लोग क्या करते थे। चाहे कहीं भी रहते हों (मन्दिर में या घरों में)। इस शब्द में ऐसा कुछ नहीं है कि इसे यहूदियों की तरह स्तुति करने तक सीमित कर दिया जाए। प्रेरितों 5:12 में ध्यान दिलाया गया है कि ''वे सब एक चित्त होकर *सुलेमान के ओसारे* में इकट्ठे होते थे।'' सुलेमान का ओसारा अन्यजातियों के आंगन में था। यह मन्दिर का वह भाग नहीं है जहां पर यहूदी लोग आराधना करते थे। [30]क्योंकि यहां ''रोटी तोड़ना'' प्रतिदिन होता था, और प्रभु-भोज केवल सप्ताह के पहले दिन ही खाया जाता था, यहां उपयुक्त वाक्य सामान्य भोजन ही होना चाहिए। मसीहियों की संगति के प्रकटावे का महत्वपूर्ण भाग उनका इकट्ठे भोजन करना था। संगत के इकट्ठा खाने को हिन्दी की बाइबल के अनुसार ''प्रेम सभा'' कहा जाता था (यहूदा 12)।

[31]केवल किसी के आकार में बढ़ने का यह अर्थ नहीं कि उसका यह ''विकास'' परमेश्वर को भाता है। परमेश्वर को भाने के लिए आवश्यक है कि सच्चाई का सौदा करने के लिए कोई समझौता नहीं होना चाहिए। परमेश्वर चाहता है कि हम संख्या के साथ-साथ आध्यात्मिकता में भी बढ़ें। परन्तु संख्या में विकास पर परमेश्वर के प्रति विश्वास सदैव प्रथम स्थान प्राप्त करता है। बढ़ती तो कैंसर की गिल्टी भी है, परन्तु यह सेहत बनने का संकेत नहीं, बल्कि प्राण-घातक विकास है।